International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
April- 2020, Volume-7, Issue-2
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

भारतीय मूर्तिशिल्प-रचनात्मक एवं कलात्मक अध्ययन

शबनम
शोधार्थिनी
ललित कला विभाग
मालवांचल विश्वविद्यालय
इन्दौर, म0प्र0

डा0 वर्षा रानी
शोध निर्देशिका
ललित कला विभाग
मालवांचल विश्वविद्यालय
इन्दौर, म0प्र0

कला मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है इसके अभाव में जीवन नीरस प्रतीत होगा। भारत अनेक कलाओं का देश है जहाँ अनेक ललित कलाओं ने अपना अस्तित्व उच्च पायदान पर प्राप्त किया। कला कोई भी हो वह मानव अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन मानी जाती है। नृत्य कला, काव्य कला, चित्रकला, वास्तुकला के साथ साथ मूर्तिकला इस कार्य में सार्थक सिद्ध हुई है। अन्य कलाओं की भाँति ही भारतीय मूर्ति कला भी अत्यन्त प्राचीन कला है अगर हम पाषाण काल की बात करें तो जब आदि मानव हर प्रकार की कलात्मक एवं रचनात्मक क्रिया से अनभिज्ञ था उस समय भी मानव ने अपनी सृजनात्मक शक्ति के बल पर पाषाण उपकरणों को काट छाँटकर नवीन आकृति प्रदान की व अनेक पाषाण मोहरों व मूर्तियों का सृजन किया। कला एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है जो मनुष्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों एवं मनोभावों को चैतन्य स्तर पर ले जाती है। जिससे मनुष्य को कुछ नवीन कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। कलाएँ मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है। ललित कलाएँ एवं उपयोगी कलाएँ। ललित कला के अन्तर्गत पाँच कलाएँ आती है– चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य या वास्तुकला, संगीत कला एवं काव्यकला जो हमारी ज्ञानन्द्रियों को आनन्द का अनुभव कराती हैं। इन सभी कलाओं में मूर्तिकला का अपना मुख्य स्थान है।

भारतीय मूर्तिकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन हैं। इसका विकास मानव सभ्यता के साथ ही आरम्भ माना जाता है। प्रारम्भिक प्रस्तर युग की बात अगर की जाये तो उस समय मानव वनों में रहकर अनगढ़ पत्थरों के औजार एवं हथियार बनाकर उनकों उपयोग में लाता था। मध्य प्रस्तर युग में मानव नें विभिन्न प्रकार के नुकीले व धारदार पत्थरों के औजारों को प्रयोग में लाना व बनाना प्रारम्भ कर दिया था। नव प्रस्तर युग में मनुष्य ने मिटटी के पात्रों का हाथ से निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था। कांस्य युग में मनुष्य ने वैदिक क्षमता के आधार पर चाक पर बर्तन बनाने जैसे अतुल्यनीय कार्य को कर दिखाया। ऐसे अनेक अज्ञात कलाकार है जिन्होंने भारतीय मूर्तिकला में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसे अज्ञात कलाकारों की संरचनात्मकता का काल लगभग आठवीं शताब्दी तक का है लगभग वही समय जब शिल्पशास्त्र का उदय हुआ और हिन्दु धर्मादर्शन को एक दृश्यात्मक भाषा प्रदान की गई। मूर्तिकला के क्षेत्र में उसी समय एक ऐसी शैली ने जन्म लिया होगा जो मुखर आकृतियों तथा डिजाइनों में अत्यन्त निपुण तार्किकता पर आधारित होगी। सजीव तथा इन्द्रिया विषयक विधि जिनके रूप चिकने एवं पूर्ण पृष्ठाकार आकृतियों पर आधारित है वह उसी मौलिक शैली की शक्ति है और परम्परागत भारतीय मूर्तिकला को एकता और विशेषता प्रदान करती है। कला में शैली एक अमूल्य वस्तु है क्योंकि वह कलाकार को दुविधा की स्थिति से अलग रखती है और कौशल की खोज प्रदान करती है। भारतीय कला का उपयोग पूजा

आदि धार्मिक कार्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भी किया जाता है। इस प्रकार यदि यह कहा जाये कि कला का एक मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक एवं धार्मिक भी रहा है तो कोई अतिश्योक्ति न होगी।

भारतीय सभ्यता के इतिहास का अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि भारत में मूर्तिकला एवं वास्तुशिल्प की जड़े बहुत गहराई तक फैली हुई है। ऋग्वेद में एक जगह खोखली मूर्ति की चर्चा है जिससे उस समय खोखली कास्टिंग का अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय मूर्तिकला की प्रगति एवं प्रोत्साहन में हिन्दु बौद्ध, तथा जैन धर्मों का एक विशेष ऐतिहासिक योगदान है।

भारतीय मूर्तिकला में कलाकार ने पेड़–पौधे, जीव–जन्तुओं से लेकर अंसख्य देवी–देवताओं को चित्रित किया है। ताँबे के पत्रों को काटकर बनायी गई आकृतियों के बाद ही मूर्तिकला का श्री गणेश हो जाता है। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों दो ऐसे स्थान है जहां यह सभ्यता खूब फली–फूली, यही से अनेक अतुल्यनीय मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। इसमे हड़प्पा सभ्यता का विकास 2500 ई0 पू0 के लगभग से 4400 ई0 पू0 के लगभग माना जाता है। यहाँ से पशुपति मुद्रा, वृषभ मुद्रा श्रृंग मुद्रा के अतिरिक्त पुरूष की आवक्ष मूर्ति, नर्तक की मूर्ति, पुरूष धड़, नर्तकी की धातु मूर्ति आदि प्राप्त हुए है। ये इन मूर्तियों को बनाने के लिये मिट्टी, गोबर, पत्थर आदि का प्रयोग करते थे। भारत में धातु मूर्ति प्रचलन भी शुरू हो गया था। भारत, नेपाल, बर्मा, थाईलैण्ड, लंका के कारीगर मिट्टी, गोबर तथा धान की भूसी का तो मुख्य रूप से प्रयोग करते, लेकिन कहीं–कहीं घोडे की लीद, बाजरे की भूसी, बालू, बकरी की लीद, हरी घास की पत्ती आदि का भी प्रयोग होता हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मोल्ड बनाने के लिए लोग विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग करते है जापान के कारीगर ऊन, लकड़ी के बुरादे का भी इस्तेमाल करते हैं। पुराने जमाने के मिस्र के कारीगरों ने गधे की लीद का भी प्रयोग किया है। मेक्सिको के कारीगर मिट्टी में कोयले का चूर्ण मिलाते है। पश्चिमी अफ्रीका के लोग मिट्टी में बकरी के बाल व कोयले का प्रयोग करते है। मोल्ड को पकाने का ढ़ंग भी अलग–अलग जगह पर अलग–अलग होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में ढलाई प्रथा वैदिक युग से ही प्रचलित है और यहाँ की प्रथा का ही प्रभाव बर्मा, लंका, सियाम(थाइलैंड), नेपाल, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, वियतनाम आदि देशों में भी पड़ा है। इस तरह यह बात गौरव क साथ की जा सकती है कि भारतीय ढलाई कला प्राचीन युग से निरन्तर चली आ रही है। इसके अतिरिक्त वैदिक युग, शैशुनाक तथा नन्दकला ने भी मूर्ति के इतिहास में अपना एक स्थान बनाया है। शैशुनाक तथा नन्दकला का समय 727 ई0 पू0 से 325 ई0पू0 तक माना जाता है।

मूर्तिकला की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण समय था। भारत में अब तक ऐतिहासिक काल की जो मूर्तियाँ मिली है वे मगध के शैशुनाक वंश के कुछ राजाओं की है। यही व समय था जब जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ भी बनने लगी थी। मौर्य काल भी मूर्तिकला जगत में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वास्तव में मौर्य काल कलाओं के विकास के लिये बहुत ही अनुकूल था क्योंकि इस काल में वास्तुकला एवं मूर्तिकला दोनों की उन्नति समान रूप से हुई। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने

इन्हें संरक्षण प्रदान किया। वह इनका विशेष संरक्षक था। उसने देश के अनेक भागों में स्तम्भ निर्मित कराये। इस प्रकार के 43 स्तम्भों का पता चला है और इन पर अशोक के लेख खुदे हुए हैं। ये स्तम्भ अशोक कालीन मूर्तिकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है और विश्व की उत्कृष्ट कला–कृतियों में इनका स्थान है। मौर्य कालीन कला की एक महत्वपूर्ण कृति मौली का हाथी हैं। चट्टान को काटकर इस हाथी का निर्माण किया गया था।

मौर्य कालीन स्तम्भों के दो प्रकार के पत्थरो का प्रयोग होता था–चित्तीदार लाल व सफेद बलुआ पत्थर, जो मथुरा के आसपास निकलता है एवं पीले रंग का चुनार पत्थर, जो वाराणसी के पास मिलता है। मौर्यो ने बिहार की बरोबर की पहाडियों में कई गुफाओं का निर्माण किया था। इसका उपयोग **'आजीवक'** धर्मावलम्बी रहने के लिये करते थे। इनके भीतर शीशे के समान पालिश की गई थी। इन गुफाओं की कटाई तत्कालीन काष्ठ संरचनाओं के समान है। इसमें लोमष ऋषि की गुफा प्रसिद्ध है। इस गुफा का दरवाजा बिल्कुल लकड़ी के दरवाजों की तरह काटकर बनाया गया है।

शुंग राजा ब्राहमण थे अतः उनके शासन काल में बौद्ध तथा जैन कला के साथ साथ ब्राहमण धर्म से सम्बन्धित कला की भी उन्नति हुई। ब्राहमणों में उस समय मूर्ति–पूजा भली–भाँति प्रचलित थी। उस समय के प्रसिद्ध विद्वान पंतजलि ने शिव, स्कन्द और विशाखा की मूर्तियों की रचना तथा विक्रय और कृष्ण लीला के चित्रों की प्रदर्शनी की चर्चा की है। इस युग का एक पंचमुखी शिवलिंग भीटा में मिला है। एक अन्य शिवलिंग दक्षिण के गुडिमल्लमू नामक स्थान पर भी प्राप्त हुआ है।

इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय शिव पूजा प्रचलित थी। भारत में अब तक ऐतिहासिक काल की दृष्टि से जो सबसे प्राचीन मूर्ति प्राप्त हुई है वो मगध के शैशुनाक वंश (727–366 ई0पू0) के राजाओं की हैं। वास्तव में भारतीय मूर्तिकला का आरम्भिक युग प्रागैतिहासिक काल से शुंगकाल तक का समय माना गया है। भारतीय मूर्तिकला की प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार है– सिन्धु घाटी सभ्यता की मूर्तिकला, मौर्य मूर्तिकला, मौर्यत्तर मूर्तिकला, गांधार कला की मूर्तियाँ, मथुरा कला की मूर्तियाँ, अमरावती मूर्तिकला, गुप्तकाल मूर्तिकला, वाकाटक मूर्तिकला, मध्यकाल मूर्तिकला, चोल मूर्तिकला, आधुनिक मूर्तिकला। कुषाण साम्राज्य में निर्मित मूर्तियां मूर्तिकला का अदभुत उदाहरण है। साम्राज्यवाद का कुषाण युग, इतिहास का एक महानतम आन्दोलन रहा है, यह उत्तर पूर्वी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान (वर्तमान अफगानिस्तान) तक फैला था।

पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी के बीच कुषाण एक राजनीतिक सत्ता के रूप में विकसित हुए और उन्होंने इस दौरान अपने राज्य में कला का बहुमुखी विकास किया। भारतीय कला जगत का परिपक्व युग यहीं से प्रारंभ होता है। यह युग 50 ई0पू0 से 300 ई0पू0 तक रहा है। गान्धार मूर्तिकला शैली की मुख्य एवं महत्वपूर्ण उत्कृष्ट मूर्ति बुद्ध की एक योगी के रूप में बैठी हुई मुद्रा वाली प्रतिमा है। इस मूर्ति को देखकर एक आध्यात्मिक शक्ति का आभास होता है। उनकी सन्यासी वाली वेशभूषा एक अलग ही आभा बिखरे रही है। उनकी बड़ी बड़ी आँखे, ललाट पर तीसरे नेत्र और सिर पर उभार देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे सब सुन रहे और समझ रहे है। बौद्ध विषय वस्तु की इस शैली पर यूनानी प्रभाव था। मथुरा शैली भी गांधार शैली की भाँति कुषाण काल में मूर्तिकला का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था।

ई0पू0 द्वितीय शताब्दी से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक उत्तरी भारत में स्थापत्य कला व मूर्तिकला के मुख्य केन्द्र के रूप में मथुरा ने अपना एक विशेष स्थान बना लिया था। ईसा की प्रथम तीन शताब्दियों को मथुरा शैली मूर्तिकला का स्वर्णिम काल कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। मथुरा जैन धर्म का भी महत्वपूर्ण केन्द्र रहा हैं। यहाँ के कंकाली टीले से खुदाई में जैनियों के विशाल स्तूप के अवशेष प्राप्त हुए है। इन अवशेषों से प्राप्त आयाग–पट्ट विशेष महत्वपूर्ण है। आयाग–पट्ट प्रस्तर खंड होता है, जिस पर तीर्थंकरो की तथा अन्य पूज्य आकृतियाँ खुदी होती थी। मथुरा में ब्राहमण धर्म से सम्बन्धित अनेक मूर्तियों को भी बनाया गया। इनके साथ ही महायान बौद्ध धर्म के नये आदर्शों ने तत्कालीन मूर्ति शिल्पकारों को प्रेरित किया था।

पुरात्व शास्त्रियों के अनुसार बुद्ध मूर्तियों का निर्माण इस शैली के कलाकारों द्वारा कला क्षेत्र में किया गया एक महान योगदान है। इन मूर्तियों में प्रयुक्त पत्थर सफेद–लाल था, जो शताब्दियों तक अपनी उत्कृष्ट कलात्मक गुणवत्ता के रूप में विद्यमान रहा। यह सफेद चित्तीवाला लाल रवादार पत्थर सीकरी, भरतपुर आदि की खदानों से प्राप्त हुआ है। यक्ष यक्षियों, वृक्षिका, अमरयुग, क्रीडादृश्य, मन्दिरों, विहारों एवं स्तूपों के और उनकी वेष्टनियों के भिन्न–भिन्न अवयवों के साथ–साथ अब मूर्तियों के विषयो में बुद्ध की खड़ी हुई तथा पद्मासन प्रतिमाएँ भी सम्मिलित हो जाती है। इन सब मूर्तियों में कहीं भी गांधार छाया नही मिलती। श्रृंगार–रस–प्रधान मूर्तियों की भाव भंगिमाएं तथा अंग प्रत्यंगों में वही अत्युक्ति है जो पहले से चली आती है। बुद्ध मूर्ति में भी कही से उस वास्तविकता का दर्शन नही होता जो गांधार वालों ने अपनी कृतियों में उस समय मढ़ना चाहा है।

एक बात और ध्यान देने की है। कुषाण कालीन मथुरा की बुद्ध व बोधिसत्व मूर्तियों में अधिकांश खड़ी मूर्तियाँ हैं, जिनकी अतिरिक्त ऊँचाई तथा शैली स्पष्ट रूप से शैशुनाक मूर्तियों व खडी जैन मूर्तियों की है। इन मूर्तियों में कही भी अश्लीलता अथवा कामोत्तेजना की भाव भंगिमा नही दिखाई देती है।

भारतीय कला के इतिहास में, मथुरा की कुषाण कला इसलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसने प्रतीकवाद और मूर्ति शिल्पवाद को अपनाया और बाद में उसे स्वीकार कर लिया। उदाहरण के लिये, पहली बार मथुरा में देवी–देवताओं की मूर्तियों की रचना की गई। बुद्ध मूर्तियों का प्रभाव चारों ओर फैला और चीन के कला केन्द्रों तक पहुँचा।

जिस समय भारत में गांधार शैली और मथुरा शैली का बोलबाला चारों ओर हो रहा था उसी समय दक्षिणी भारत में आन्ध्र प्रदेश के गन्त्र जिले में अमरावती कला शैली का उद्भव हुआ। अमरावती वाकाटक कला का भी भारतीय मूर्तिकला इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। वाकाटक वंश (300 से 500 ई0 लगभग) सातवाहनों के उपरान्त दक्षिण की महत्वपूर्ण शक्ति के रूप मे उभरा। उत्तर भारत में जिस समय गुप्त राजाओं का आधिपत्य था उसी समय दक्षिण में वाकाटकों का राज्य था। अजन्ता

की गुफाओं मे मिलने वाली मूतियाँ इसी समय गढ़ी गई थी। वाकाटक राजा शैव थे। अतः उनके समय में शैव धर्म से सम्बन्धित विषयों पर आधारित मूर्तियाँ ही अधिक बनी।

वाकाटक मूर्तिकला के पश्चात मध्य काल हमें कहीं कहीं पर गुप्त कला के कुछ तत्व अवश्य देखने को मिलते हैं। परन्तु इनके साथ ही इस समय की कला में कुछ नवीन परिवर्तन भी अवश्य आ गये। कला शिल्पियों ने विभिन्न पौराणिक घटनाओं का चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया था तथा अब देवी–देवताओं की छवियों को स्वतन्त्र प्रतिमा में अंकित करना प्रारम्भ हो गया था। परन्तु कला शिल्पियों ने इन छवियों को पर्वतों एवं गुफाओं में विशाल दृश्यों में को उत्कीर्ण करके जो कला परिचय प्रस्तुत किया है वह अद्विितीय है।

गुप्त काल को राजनैतिक दृष्टि से स्वर्ण युग की संज्ञा दी जाती है परन्तु इसके पश्चात राजनैतिक विघटन एवं हास होना प्रारम्भ हो गया। तथापि यह काल विज्ञान धर्म, कला, विज्ञान, चिकित्साशास्त्र व गणित आदि के उत्कर्ष का काल रहा है। यही वह समय था जब केन्द्रीय शक्ति के अभाव मे विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना होने लगी। इनमें तीन राजवंश–पाल, गुर्जर–प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट प्रमुख थे। राजनैतिक बिखराव के इस काल में भारतवर्ष में जिन कला केन्द्रों में एवं जिन राजवंशों के द्वारा स्थापत्य तथा मूर्तिकला को संरक्षण दिया गया, उनके प्रमुख नाम इस प्रकार है– राजकूट राजवंश– मान्यखेर, पल्लव राजवंश– कांची, गुर्जर प्रतिहार राजवंश–कन्नौज।

बम्बई मूर्तिकला का प्रमुख केन्द्र रहा है। 20वीं शताब्दी के आरम्भिक 30वर्षों तक यह स्थान इस कला का प्रधान केन्द्र रहा। आधुनिक मूर्तिकला की शुरूआत रौदा से की जा सकती है और डेविड स्मिथ सरीखे मूर्तिशिल्पियों तक पहुँचकर मूर्तिशिल्प की अपनी भाषा और अपनी समस्याओं से परिचित हुआ जा सकता है। कुछ कला आन्दोलनो ने मूर्तिशिल्प को अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय किया (पॉपकला, काइनेटिक कला वगैरह) पर ब्रांकुसी काल्डर, गाबो, जेकब एपस्टाइन, गोंसालेस, जिआकोमेतो, हेनरी मूर, बार्बरा हेपवर्थ, ओल्डेल वर्ग, डेविड स्मिथ सरीखे दर्जन भर नामों की मदद से आधुनिक मूर्तिशिल्प का एक समानान्तर इतिहास भी बनाया जा सकता है।

आधुनिक भारतीय मूर्तिकला पर फ्रांसीसी सुप्रसिद्ध मूर्तिकार रोंदा की कला का बहुत प्रभाव पड़ा। रोंदा की प्रतिमाओं में मार्मिकता की अनुभूति बहुत गहरी है। इससे प्रभावित होने वाले भारतीय मूर्तिकारों में फणीन्द्रनाथ बोस तथा देवी प्रसाद राय चौधरी के नाम प्रमुख है। इन कलाकारों ने भारत की आधुनिक भावनाओं जैसे देश भक्ति, समाजवाद, श्रम की महत्ता आदि से सम्बन्धित अनेक मूर्तियों की रचना की है जिनमें एक से अधिक मानवाकृतियों का समूह दिखाया गया है। **ष्श्रम की विजय'** तथा **ष्शहीद स्मारक'** इस प्रकार की प्रसिद्ध कृतियाँ है जिनमें भारतीयता देशभक्ति आदि की भावनाएं है तथा तकनीकी दृष्टि से गति मुद्राओं और समूह योजना का प्रभावशाली रूप दिखाई देता है।

सार रूप में, भारत में वास्तु शिल्प, कला एवं शिल्प व मूर्तिकला की जड़ें भारतीय सभ्यता के इतिहास मे बहुत ही दूर व गहराई के साथ जकड़ी हुई दिखाई देती है। इसमें कोई संशय नही है कि भारतीय मूर्तिकला प्रारम्भ से ही यथार्थ रूप लिए

हुए है। भारतीय मूर्तिकला के विषय में अगर बात की जाए तो इसमें कलाकारों ने पेड़–पौधे, जीव–जन्तुओ से लेकर असंख्य देवी–देवताओं का चित्रण किया है। सिन्धु धाटी सभ्यता के मोहनजोदड़ों में बड़े बड़े जल कुण्ड व वहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ इसका अच्छा उदहारण है। इनके अतिरिक्त कांचीपुरम, मदुरै, रामेश्वरम आदि कला के जीते जागते उदाहरण है। यही नहीं मध्य प्रदेश के खुजराहों के मन्दिर भारतीय वास्तुकला का अनुपम उदहारण है। आकार सौन्दर्य एवं उत्कीर्ण मूर्तियों की प्रचुरता के कारण वे भारत के अन्य सब स्मारकों में अद्वितीय है प्रायः सभी मन्दिर केन नदी के पूर्वी तट पर स्थित पन्ना की खानों में से उत्खनित मटियाले बलुए पत्थर में बनें है। इमारत को दृढ़ बनाने के लिए लोहे के संधरों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त उड़ीसा का सूर्य मन्दिर भी इस कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इस प्रकार भारतीय कला अपने आप मे बहुत कुछ समेटे हुए है। इसनें कला के ऐसे उत्कृष्ट नमूने दिये हैं जिनके विषय मे चर्चा मात्र से ही मन नवीन विचारों से भर जाता है। वास्तव में देखने की ललक दर्शक में और अधिक बढ़ जाती है। इतिहास के कला खण्ड व मूर्तिशिल्प समृद्ध साक्ष्य की ओर संकेत करते है। भारतीय मूर्तिशिल्प कला को न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में उच्चतम स्थान प्राप्त है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

- अग्रवाल, बी0एस0– म्यूजियम स्टडीज, पृथ्वी प्रकाषन, वाराणसी, 1973।
- अग्रवाल, ओ0पी0– डाक्यूमेण्टेषन इन म्यूजियम्स, म्यूजियम एसोसिएषन ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1973।
- डॉ0 गिरिराज किषोर अग्रवाल– 'भारतीय मूर्तिकला परिचय' पृष्ठ– 8–9।
- भगवत शरण उपाध्याय– 'भारतीय कला का इतिहास' पृष्ठ– 40।
- वासुदेव शरण अग्रवाल– 'भारतीय कला' पृष्ठ– 5–37।
- डॉ0 शषि आस्थाना– 'संग्रहालय पुरातत्व' मौर्य, शुंग एवं सातवाहन कला, तीसरी शती ईसापूर्व।
- डॉ0 गायत्री नाथ पन्त– 'माटी रे माटी तेरे कितने रूप' धर्मयुग।
- बी0सरस्वती– 'पॉटरी मेकिंग कल्चर्स एण्ड इण्डियन सिविलाइजेषन' नई दिल्ली–1978।
- डॉ0 सत्य प्रकाष– 'एज स्टोन स्पीक्स'।
- विजय वर्मा– 'राजस्थान के प्राचीन मन्दिरों का स्थापत्य' पृष्ठ– 8–9 इतवारी पत्रिका।